|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 16: दैवासुरसंपद्विभागयोग

2/2 (श्लोक 4-24), रविवार, 17 नवंबर 2024

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/eerEct4V550

छब्बीस दैवीय गुण तथा षड्विकार

सुमधुर प्रार्थना, श्रीहनुमान चालीसा पाठ, दीप प्रज्वलन और गुरु वन्दना के साथ आज के इस सत्र का आरम्भ हुआ। श्रीभगवान की अतिशय मङ्गलमय कृपा से हम सबका ऐसा सद्भाग्य जागृत हुआ कि हम अपने इस मानव जीवन को सार्थक करने के लिए, सुफल करने के लिए, उसको परमोत्कर्ष पर पहुँचाने के लिए और इस मानव जीवन का परमोच्च लक्ष्य प्राप्त करने के लिए श्रीमद्भगवद्गीता के अभ्यास में, उसके अध्ययन में, उसके श्लोकों को सीखने में, उसके अर्थ को जानने में, उसके सूत्रों को समझने में तथा उसे जीवन में अपनाने के लिए अग्रसर हो गये हैं। पता नहीं, हमारे कोई इस जन्म के पुण्य हैं, हमारे कोई पूर्वजन्मों के पुण्य हैं, हमारे पूर्वजों के कोई सुकृत हैं या फिर किसी जन्म में किसी सन्त महापुरुष की कृपादृष्टि हमारे ऊपर पड़ गई, जिस कारण हम श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ने के लिए चुन लिये गये।

हमारे मन में यह दृढ़ भावना होनी चाहिए कि हमने श्रीमद्भगवद्गीता कक्षा को नहीं चुना है, हम श्रीमद्भगवद्गीता का पठन करने के लिये चुने गये हैं।आपने बारहवाँ और पन्द्रहवाँ अध्याय देखा। सोलहवें अध्याय का भी प्रारम्भ गत सप्ताह किया गया।

पिछली बार आपने तीन श्लोकों में छब्बीस दैवीय गुणों के विषय में जाना। श्रीमद्भगवीता के श्रीकृष्ण धर्म के विशिष्ट वक्ता हैं। विश्व में बाकी सब पद्धतियों में सभी वक्ता कहते हैं कि तुम ऐसा करो, ऐसा मत करो। श्रीमद्भगवीता के कृष्ण "तुम क्या करो, क्या नहीं करो"? इसका अधिक आग्रह न रख कर, "तुम जो कुछ कर रहे हो, उसकी दिशा तुम्हें कहाँ पहुँचा रही है"? इसका मूल्याङ्कन करने पर जोर देते हैं। "तुम स्वयं को भक्त कहते हो तो उनतालीस भक्त लक्षण तुम्हारे अन्दर हैं क्या?" ये उनतालीस भक्त लक्षण हमने बारहवें अध्याय में सुने। "तुम स्वयं को दैवीय मानते हो तो ये छब्बीस दैवीय लक्षण तुम्हारे अन्दर हैं क्या? तुम स्वयं को ज्ञानी मानते हो तो चौदहवें अध्याय में गुणातीत के लक्षण बताये, तेरहवें अध्याय में ज्ञानी के लक्षण बताये, दूसरे अध्याय में स्थितिप्रज्ञ के लक्षण बताये, वे तुम्हारे अन्दर हैं क्या?" श्रीभगवान ने पूरी श्रीमद्भगवद्गीता में अनेक स्थानों पर मूल्याङ्कन सूची दे दी। तुम स्वयं का मूल्याङ्कन करो।

हमारा दिमाग इसके विपरीत चलता है। हम दूसरों को देखते हैं कि उसमें दैवीयता नहीं है। अभी जब आसुरी गुण बताये जाएँगे, तब भी हम दूसरों में ढूँढेंगे। हम स्वयं का मूल्याङ्कन नहीं करना चाहते हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि ये सारी सूचियाँ स्वयं के लिये प्रयोग करो। हमें स्वयं का मूल्याङ्कन करना चाहिए कि हमारे अन्दर दैवीयता में कहाँ कमी है? कहाँ आसुरी लक्षण दिख रहे हैं? इसे ठीक करने के लिये अपनी साधना को ठीक करना होगा। श्रीभगवान कहते हैं कि तुम कौन सी पूजा करते हो? कौन सा जप करते हो? कौन सा ध्यान करते हो? कौन सा योग करते हो? कर्मयोग से, ज्ञानयोग से, ध्यानयोग से, भक्तियोग से या अन्य किसी योग से श्रीभगवान को प्राप्त करने के मार्ग में लग गये हो, इससे मुझे कोई अन्तर नहीं पड़ता है।

जैसे किसी को मुम्बई से दिल्ली जाना है तो चाहे वह बस से जाए, रेल से जाए, विमान से जाए, कार से जाए, लिफ्ट माँग कर जाए या पैदल जाए, वह दिल्ली ही पहुँचेगा और दिल्ली सबके लिए एक ही होगी। ऐसा नहीं है कि विमान से जाने वाले को अच्छी वाली दिल्ली मिलेगी और पैदल जाने वाले को कुछ खराब वाली दिल्ली मिलेगी। इसी प्रकार श्रीभगवान को प्राप्त करने का कोई भी मार्ग चुनो, प्राप्त होने वाले श्रीभगवान एक ही हैं, वे अलग-अलग नहीं हैं.

एक सूफी ने दूसरे सूफी से पूछा कि ऊपरवाले (श्रीभगवान) तक पहुँचने के कितने रास्ते हैं? उसने कहा कि इस भूमि पर धूल के जितने कण हैं, उतने रास्ते हैं। **श्रीमद्भगवद्गीता के कृष्ण रास्तों के आग्रही नहीं हैं, वे लक्ष्य के आग्रही हैं।**

आप पूजा कितनी देर करते हैं? आप माला कितनी करते हैं? आप जप कितने करते हैं? आप ध्यान कितना करते हैं? इससे अन्तर नहीं पड़ता, बल्कि यह सब करने से आपके स्वभाव में कितना परिवर्तन आया? इससे अन्तर पड़ता है इसलिये श्रीभगवान ने छब्बीस दैवीय गुणों की सूची दी है।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः |
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् || 16.1 ||

अहिंसा सत्यमक्रोध:(स्), त्यागः(श्) शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं(म्), मार्दवं(म्) ह्रीरचापलम्।। 16.2 ।।

तेजः क्षमा धृतिः(श्) शौचम्, अद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं(न्) दैवीम्, अभिजातस्य भारत।।16.3।|

श्रीभगवान कहते हैं कि तुम किसी भी पद्धति से चलते हो, तुम्हारे अन्दर ये छब्बीस दैवीय गुण आ गये कि नहीं? तुम्हारे जीवन में सत्य आया क्या? तुम्हारे जीवन में अहिंसा आयी क्या? अहिंसा केवल पशु को मार कर न खाना ही नहीं है, बल्कि मेरे द्वारा किसी का दिल न दुखाया जाये, यह अहिंसा है। मैं अकारण क्रोध तो नहीं करता? मेरा क्रोध कम हुआ क्या? मेरे जीवन में अभय आया कि नहीं? क्या मैं अभी भी डरता हूँ?

कुछ व्यक्तियों से पूछा जाये कि किस बात का डर है? तो वे कहते हैं कि यह नहीं पता कि किस बात का डर है, परन्तु डर लगता रहता है कि हमें कुछ हो न जाये। यह अनिश्चितता का डर होता है।

श्रीभगवान कहते हैं कि तुम दान देते हो कि नहीं? तुम्हारा दान देने का स्वभाव बना कि नहीं? तुम्हारा अपनी इन्द्रियों पर संयम आया कि नहीं? तुम्हारे द्वारा कोई गलत काम हो जाने पर तुम्हें उसके लिए लज्जा आती है कि नहीं?

हम सबकी आदत होती है कि हम अपनी गलती होने पर भी मानते नहीं हैं, बल्कि उसके बचाव में अनेक बातें बताते हैं, जैसे इस कारण हो गया, उस कारण हो गया। इसके कारण हो गया, उसके कारण हो गया, आदि। श्रीभगवान कहते हैं कि भूल हो जाने पर लज्जा आनी चाहिए।

श्रीभगवान कहते हैं कि जीवन में कुछ तेज आया कि नहीं? कोई हमारे मन के अनुकूल व्यवहार न करे, कोई हमारी क्षति ही क्यों न कर दे, क्या हम उसे क्षमा कर सकते हैं? क्षमा करने का अर्थ यह नहीं है कि 'जाओ मैं तुमसे बात नहीं करूँगा'। इसके लिए अङ्ग्रेजी में बहुत सुन्दर शब्द है- "Forgive and forget" अर्थात् क्षमा करके भूल जाना।

हमारे जीवन में शौचाचार है कि नहीं? अद्रोह है कि नहीं? कोई अपने जीवन में मुझे अपना शत्रु मानता होगा तो अलग बात है, मैं किसी को भी अपना शत्रु नहीं मानता हूँ। मेरे जीवन में ऐसा कोई भी नहीं है जिससे मैं मिल न सकूँ, बात न कर सकूँ। जिसके घर न जा सकूँ या जिसे अपने घर न बुला सकूँ।

नातिमानिता- मैं इस बड़े पद पर हूँ। मैंने बहुत धन अर्जित किया है। मैंने बहुत ज्ञान प्राप्त किया है। मैंने श्रीमदभगवद्गीता सीख ली है। मैंने इतने अध्याय कण्ठस्थ कर लिए हैं, मैं गीताव्रती बन गया हूँ। मेरे सारे निर्णय सही होते हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि किसी भी बात का मान या घमण्ड नहीं करना चाहिए।

आगे श्रीभगवान ने दैवीय गुणों का विस्तार किया किन्तु अगले दो श्लोकों में आसुरी गुण भी बताये जिनका आगे और विस्तार किया

जायेगा।

16.4

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च, क्रोधः(फ्) पारुष्यमेव च।
अज्ञानं(ञ्) चाभिजातस्य, पार्थ सम्पदमासुरीम्।।16.4।।

हे पृथानन्दन ! दम्भ करना, घमण्ड करना और अभिमान करना, क्रोध करना तथा कठोरता रखना और अविवेक का होना भी - (ये सभी) आसुरी सम्पदा को प्राप्त हुए मनुष्य के (लक्षण) हैं।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं, "हे पार्थ! दम्भ, घमण्ड, अभिमान, क्रोध तथा कठोरता और अज्ञान, ये सभी आसुरी सम्पदा को लेकर जन्म लेने वाले मनुष्य के लक्षण हैं।

दम्भ, दर्प और अभिमान, ये तीनों शब्द देखने में एक जैसे लगते हैं। अभिमान का अर्थ है स्वयं पर अभिमान। मैं बहुत बुद्धिमान हूँ, बहुत पैसे वाला हूँ, बहुत रूपवान हूँ, बहुत शक्तिशाली हूँ आदि। **जहाँ मैं आ गया, वह सब अभिमान है।**

मेरा जहाँ आया, वह दर्प है। मेरी पत्नी, मेरे बच्चे, मेरा व्यवसाय, मेरी बड़ी गाड़ी, मेरा बड़ा घर आदि।

जहाँ न मैं है न मेरा है बल्कि दोनों का दिखावा है। फेसबुक पर फोटो आती है- सड़क पर खड़ी फरारी के साथ फोटो लिया। अपनों को सोशल मीडिया के माध्यम से दिखाना और जब पूछा जाता है कि कब ली? तो बस हँसने की इमोजी भेज देते हैं। **जो वस्तु अपनी नहीं है फिर भी ऐसा भाव दिखाना यह दम्भ है।**

कहीं गीताजी का पाठ हो रहा है। हमें आता नहीं है, फिर भी बैठ कर ऐसे दिखाते है कि जैसे गीताजी का पाठ कर रहे हैं, यह भी दम्भ है। प्रतिदिन की पूजा दस मिनट करते हैं किन्तु एक दिन अतिथि आये तो आधे घण्टे तक मन्दिर में घण्टी बजा रहे हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि ये तीनों आसुरी स्वभाव को बढ़ाते हैं।

आगे श्रीभगवान क्रोध के विषय में बताते हैं। वैसे षड्विकार होते हैं, किन्तु पाँच मुख्य विकार होते हैं - काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहङ्कार। छठा आलस्य माना जाता है। इसमें शेष चार तो स्वतन्त्र हैं परन्तु क्रोध स्वतन्त्र विकार नहीं है। यह आश्रित विकार है। ऐसा नहीं हो सकता कि आपको बैठे-बैठे क्रोध आ गया। बैठे-बैठे कामना, लोभ, मोह और अहङ्कार आ सकता है। क्रोध बैठे-बैठे नहीं आता। जब इन चार विकारों में से किसी एक में विघ्न पड़ेगा, तब क्रोध आएगा।

जिसे भी क्रोध आता है और वह क्रोध कम करना चाहता है तो उसका मूल कारण ढूँढना पड़ेगा। क्रोध का ईंधन कहाँ से आ रहा है, जब तक हमें यह नहीं ज्ञात होगा, तब तक क्रोध को नियन्त्रण करना सम्भव नहीं होगा। हमें सबसे अधिक क्रोध इसलिये आता है कि हमारी बात नहीं मानी गयी। मैं सही हूँ फिर भी सब मेरे अनुसार नहीं चलते, मेरी बात नहीं मानते। यह कामना का क्रोध है। सब मेरी बात मानें, यह कामना है। हममें यह धारणा होती है कि हमें क्रोध अमुक व्यक्ति के कारण आता है, जबकि सत्य यह है कि हमें कोई दूसरा व्यक्ति क्रोध नहीं दिला सकता। हमें हमारी अपेक्षा क्रोध दिलाती है।

इसे श्रीकृष्ण, श्रीबलराम और सात्यकि जी की एक कहानी से समझते हैं-

बलरामजी को बहुत क्रोध आता था। एक बार बलरामजी किसी से अकारण क्रोधित हो गये। श्रीकृष्ण छोटे थे। उन्होंने सोचा कि अगर दाऊ को समझाऊँगा तो वह मुझ से भी क्रोधित हो जाएँगे। उन्होंने एक लीला रची। उन्होंने दाऊ से कहा कि चलो भ्रमण करके आते हैं। निकट ही एक जङ्गल है, वहाँ एक बहुत सुन्दर तालाब है। सायंकाल में वहीं विहार करेंगे, रात्रि में वहीं भोजन करेंगे तथा वहीं विश्राम करेंगे। हमारे साथ कोई सेवक नहीं जाएगा। केवल हम तीनों ही जाएँगे। दाऊ तैयार हो गये। वे तीनों गये। रात्रि में दाऊ ने कहा कि भीषण जङ्गल है। यदि हम तीनों सो गये तो खतरा है। यह वन हिंसक पशुओं से भरा हुआ है। हम सबको एक-एक पहर जाग कर पहरा देना चाहिए। श्रीकृष्ण ने कहा कि यह बात सही है, किन्तु मुझे बहुत निद्रा आ रही है अतः सबसे पहले मैं सोऊँगा। बलरामजी ने कहा कि ठीक है, मैं सबसे पहले जागता हूँ। रात्रि में अचानक बलरामजी को अन्धेरे में एक आकृति इधर से उधर जाती हुई दिखी। बलरामजी सावधान हो गये। वह आकृति दोबारा फिर दिखी। बलरामजी उठ कर खड़े हो गये। वे कुछ आगे बढ़कर देखने लगे। जितना वे आगे बढ़ते, उन्हें ऐसा प्रतीत होता कि कोई छोटा सा जीव उन्हें उचक-उचक कर चिढ़ा रहा है। बलरामजी उसके

पीछे दौड़े। जितना वे उस जीव के पास आते, वह उन्हें चिढ़ा कर भागता, बलरामजी को उतना क्रोध आता। हर बार जब बलरामजी चिल्ला कर बोलते, वह जीव पहले से कुछ बड़ा हो जाता। वह एक किलोमीटर तक उस जीव के पीछे भागते रहे, फिर उन्हें महसूस हुआ कि जब मैंने भागना आरम्भ किया था, तब तो यह छोटा सा था, अब इतना बड़ा हो गया। एक समय आने पर वह जीव ठहर गया। बलरामजी उसके निकट आये और उन्होंने पूछा कि तुम कौन हो? उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला। बलरामजी ने उस जीव को जोर से एक मुक्का मारा। वह जीव तत्काल दोगुना बड़ा हो गया। बलरामजी उस जीव को जितना मारते जाते, वह जीव उतना बड़ा होता जाता। दो घण्टे में यह स्थिति हो गयी कि बलराम जी का मुकुट कहाँ गया, हार कहाँ गया, कुछ ज्ञात नहीं और वे अस्त-व्यस्त होकर बेहाल हो गये, किन्तु वह जीव वैसा का वैसा बड़ा होता जा रहा था। इतने में जो समय तय किया था, वह पूरा होने लगा। बलरामजी को लगा कि यदि किसी को ज्ञात हो गया कि कोई आया था और मैं उसे हरा नहीं पाया तो अपमान हो जायेगा। उन्होंने सोचा कि किसी को पता न चले, मैं जाकर सो जाता हूँ। इससे उन दोनों को निपटने देता हूँ।

उन्होंने जाकर सात्यकि को जगाया। सात्यकि ने उनका हाल देखा तो पूछा कि दाऊ आपका यह क्या हाल हो गया है? उन्होंने कहा कि कुछ नहीं, मैं टहल रहा था तो भागने लगा, जिससे पसीना आ गया।

बलरामजी सो गये और सात्यकि को भी वह छोटी सी आकृति दिखी। उन्होंने भी वैसा ही व्यवहार किया। उनके साथ भी लगभग वैसी ही घटनाएँ हुईं। वे भी दो घण्टे तक लड़ते रहे। वे समझ गये कि दाऊ का यह हाल भी इसी कारण हुआ होगा। उन्होंने सोचा कि जब दाऊ नहीं हरा सके तो मैं कैसे हराऊँगा? उन्होंने जाकर श्रीकृष्ण को जगाया। श्रीकृष्ण ने भी पूछा कि भैया यह क्या हुआ? उन्होंने भी वही बहाना बना दिया। श्रीकृष्ण ने कहा कि कोई बात नहीं, आप सो जाइए। दाऊ और सात्यकि आधी आँख खोलकर एक दूसरे को देख रहे थे। किसी को निद्रा नहीं आ रही थी।

तीन घण्टे पश्चात श्रीकृष्ण वापस आये और उन दोनों को जगाया। वे दोनों तो पहले से जागे हुये थे। उन्होंने उठ कर देखा तो श्रीकृष्ण तो बिलकुल पहले जैसे ही थी। दोनों के मन में जिज्ञासा थी कि क्या श्रीकृष्ण को वह नहीं मिला? लेकिन पूछें कैसे? पूछेंगे तो अपमान होगा। श्रीकृष्ण ने पूछा "दाऊ निद्रा तो अच्छी आयी? उन्होंने कहा "हाँ ठीक ही था, बस भूमि चुभ रही थी"। श्रीकृष्ण ने पूछा कि दाऊ और कोई समस्या तो नहीं? दाऊ ने कहा नहीं और क्या समस्या होगी? श्रीकृष्ण ने सात्यकि से भी पूछा तो उन्होंने भी वही उत्तर दिया।

कुछ देर पश्चात सात्यकि ने श्रीकृष्ण से पूछा, "कृष्ण सच बताओ, तुम्हें वह मिला कि नहीं? श्रीकृष्ण ने पूछा, "कौन मिला कि नहीं मिला? अब दाऊ से रहा नहीं गया। उन्होंने कहा, "कृष्ण तुम जानते हो कि हम किसकी बात कर रहे हैं? तुम बताओ कि तुमने उसका क्या किया?" जब दाऊ ने गम्भीर होकर पूछा तो श्रीकृष्ण ने सोचा कि अब बता देना ही उचित है। उन्होंने अपनी पीताम्बरी उठायी और उसे घुमाना आरम्भ किया। दाऊ ने देखा कि वह छोटी सी आकृति श्रीकृष्ण की पीताम्बरी के अन्दर बँधी हुई है। दाऊ ने पूछा कि तुमने इसे कैसे नियन्त्रण में किया? हमें भी यह दिखा था। हम जितना भाग रहे थे, यह उतना बड़ा होता गया। श्रीकृष्ण ने कहा कि यह कोई जीव नहीं है, यह हमारा क्रोध है। यह एक ऐसा विकार है कि इसे हम जितना महत्त्व देंगे, जितना उससे लड़ेंगे, वह उतना बड़ा होता जायेगा। श्रीभगवान ने कहा कि न तो मैं इसके पीछे भागा, न इसे चुनौती दी, न इसके फँसाने पर फँसा। जब मैं इसके पीछे नहीं भागा तो यह मेरे निकट आता गया। जब मैंने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी तब यह मेरे ऊपर चढ़ गया कि मैं उस पर क्रोधित हो जाऊँ। जब मैं फिर भी उस पर क्रोधित नहीं हुआ, तब यह मेरे बिलकुल निकट आ गया और तब मैंने इसे पकड़ कर अपनी पीताम्बरी में बाँध लिया।

क्रोध का एकमात्र उपचार यह है कि हम उससे लड़ें नहीं, बल्कि उस पर ध्यान न दें। जब हम उस पर ध्यान नहीं देंगे, तब वह हमारे वश में आता है। जितना हम उसमें फँसते जाते हैं, वह हमारे सिर पर चढ़ कर हमारा ही नाश करता है।

एक बार पति-पत्नी लड़ रहे थे। वैसे वे प्रतिदिन लड़ते थे। पड़ोसियों को आदत हो गयी थी। आज रविवार था तो पति को कार्यालय नहीं जाना था। बाकी दिनों में पति के कार्यालय जाने के बाद झगड़ा बन्द हो जाता था। उस दिन झगड़ा बन्द ही नहीं हो रहा था। पड़ोसी ने झगड़ा शान्त करवाने के लिये द्वार खटखटाया। पति ने द्वार खोला तो पड़ोसी ने कहा कि बहुत अधिक शोर आ रहा है। वे दोनों उसके सामने ही झगड़ने लगे। थोड़ी देर पश्चात उसने पूछा कि झगड़ा आरम्भ किस बात पर हुआ था? दोनों को याद ही नहीं आया कि झगड़ा किस बात पर आरम्भ हुआ था।

यह हम सबके साथ होता है। सामान्यतः कारण बहुत छोटा सा होता है, पर विवाद बढ़ते-बढ़ते विकराल रूप ले लेता है। इसलिए क्रोध को जीतना हो तो श्रीकृष्ण की ही भाँति व्यवहार करना होगा।

पारुष्य अर्थात् कठोरता। कुछ व्यक्ति जीवन में बहुत कठोर होते हैं, अपने में कठोरता को पालकर रखते हैं, पिघलते नहीं। दूसरों को कष्ट में देखकर भी इनका हृदय द्रवित नहीं होता। पशुओं पर होने वाली कठोरता, पर्यावरण पर होने वाली कठोरता, मनुष्यों पर होने

वाली कठोरता, इन सबके प्रति हमारा हृदय द्रवित होना चाहिए। यदि हमारा स्वभाव दैवीय होगा तो हमें दूसरे के कष्ट में कष्ट होगा और यदि हमारा स्वभाव आसुरी होगा तो हम सोचेंगे "अरे इसके साथ तो ऐसा होना ही चाहिए"।

केदारनाथ में आपदा आई तो सब स्थानों से राहत सामाग्री भेजी जा रही थी। वहाँ एक बड़ी संस्था के बड़े अधिकारी ने एक ऐसी बात कही जो भुलाई नहीं जा सकती। उन्होंने कहा, "इतना सामान क्यों लाये हैं? ये सब गङ्गाजी के तट पर बैठ कर मदिरा पीते थे, इनके साथ इन लोगों के साथ तो ऐसा ही होना चाहिए था।" उस समय यह विचार योग्य बात थी कि जिन व्यक्तियों के पास खाने के लिए अन्न नहीं है, पहनने के लिए वस्त्र नहीं हैं, इस समय हम उनके कष्ट का विचार करें या यह विचार करें कि वह मदिरा पीते थे? इस कारण इनके साथ ऐसा होना चाहिए था। यह पारुष्य है। हम दूसरों के कष्ट में उनके दोष ढूँढते हैं, उसके साथ सहृदय नहीं होते हैं।

सबसे बड़ा अज्ञान यह होता है कि हमें पता ही नहीं होता कि हम अज्ञानी हैं। स्वयं को ज्ञानी समझना ही अज्ञान है। एक बहुत बड़े दार्शनिक ने बड़ी सुन्दर बात कही है-

"मैं जितना ज्यादा पढ़ता गया, उतना मैं जानता गया कि मैं कितना नहीं जानता हूँ।"

ये सब **आसुरी लक्षण हैं।**

16.5

दैवी सम्पद्विमोक्षाय, निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः(स्) सम्पदं(न्) दैवीम्, अभिजातोऽसि पाण्डव।।16.5।।

दैवी सम्पत्ति मुक्ति के लिये (और) आसुरी सम्पत्ति बन्धन के लिये मानी गयी है। हे पाण्डव! (तुम) दैवी सम्पत्ति को प्राप्त हुए हो, (इसलिये तुम) शोक (चिन्ता) मत करो।

विवेचन: श्रीभगवान कहते हैं कि इन दोनों सम्पदाओं में दैवीय सम्पदा मुक्ति के लिए है और आसुरी सम्पदा बाँधने के लिए है, इसलिए हे अर्जुन! तुम शोक मत करो क्योंकि तुमने तो इन छब्बीस दैवीय गुणों को लेकर जन्म लिया है। श्रीभगवान इस बात को प्रमाणित कर रहे हैं।

16.6

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्, दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः(फ्) प्रोक्त , आसुरं(म्) पार्थ मे शृणु।।16.6।।

इस लोक में दो तरह के ही प्राणियों की सृष्टि है -- दैवी और आसुरी। दैवी को तो (मैंने) विस्तार से कह दिया, (अब) हे पार्थ! (तुम) मुझसे आसुरी को (विस्तार) से सुनो।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं, हे अर्जुन! इस लोक में भूतों की सृष्टि मूलतः दो प्रकार की होती है- एक है दैवीय प्रवृत्ति वाला और दूसरा है आसुरी प्रवृत्ति वाला। दैवीय प्रवृत्ति के विषय में विस्तार से बताया गया। अब तुम आसुरी प्रवृत्ति के विषय में भी विस्तार से सुनो। हमारे भीतर कौन-कौन सी प्रवृत्तियाँ आसुरी हैं? श्रीभगवान उन पर ध्यान देने को कहते हैं।

श्रीभगवान आगे बता रहे हैं कि हमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए?

16.7

प्रवृत्तिं(ञ्) च निवृत्तिं(ञ्) च, जना न विदुरासुराः।
न शौचं(न्) नापि चाचारो, न सत्यं(न्) तेषु विद्यते।।16.7।।

आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य किस में प्रवृत होना चाहिये और किससे निवृत्त होना चाहिये (इसको) नहीं जानते और उनमें न तो बाह्य शुद्धि, न श्रेष्ठ आचरण तथा न सत्य-पालन ही होता है।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं, हे अर्जुन! आसुरी स्वभाव वाले व्यक्ति प्रवृत्ति और निवृत्ति को नहीं जानते, इसलिये उनमें न तो बाह्य शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण तथा न सत्य पालन ही होता है।

आसुरी प्रवृत्ति वाले व्यक्ति को यह नहीं पता होता कि क्या करना है और क्या नहीं करना? वह उल्टा ही सोचता है और उल्टा ही चलता है।

हम भी कई बार यही करते हैं और बाद में पश्चात्ताप करते हैं कि ऐसा क्यों किया? उस समय हमारा स्वभाव आसुरी हो जाता है। उस समय सत्य की सत्ता स्वीकार्य नहीं होती। आसुरी स्वभाव वाले व्यक्तियों का एक सामान्य वाक्य होता है, "मुझे तो झूठ स्वीकार्य नहीं है"। वास्तव में उन्हें सत्य का कुछ भी पता नहीं होता है। वे अपनी सुविधा के अनुसार सत्य का निर्माण कर लेते हैं।

16.8

असत्यमप्रतिष्ठं(न्) ते, जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं(ङ्), किमन्यत्कामहैतुकम्।।16.8।।

वे कहा करते हैं कि संसार असत्य, बिना मर्यादा के (और) बिना ईश्वर के अपने-आप केवल स्त्री-पुरुष के संयोग से पैदा हुआ है। (इसलिये) काम ही इसका कारण है, इसके सिवाय और क्या कारण है? (और कोई कारण हो ही नहीं सकता।)

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं, "हे अर्जुन! ये आसुरी प्रवृत्ति वाले व्यक्ति ईश्वर की सत्ता को भी स्वीकार नहीं करते हैं। वे कहा करते हैं कि जगत आश्रय-रहित है। वे नहीं मानते कि भगवान नाम की कोई चीज है। वे मानते हैं कि बिग-बैंग थ्योरी से ये ग्रह बन गए। वे कहा करते हैं कि "संसार सर्वथा असत्य, बिना ईश्वर के है और केवल स्त्री-पुरुष के संयोग से पैदा हुआ है। काम ही इसका कारण है, इसके सिवाय और क्या कारण है?" ऐसे व्यक्ति श्रीभगवान का आश्रय छोड़ कर कामाश्रित हो जाते हैं।

श्रीभगवान कहते हैं कि अर्जुन! कामना कभी पूरी नहीं होती।

16.9

एतां(न्) दृष्टिमवष्टभ्य, नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः, क्षयाय जगतोऽहिताः।।16.9।।

इस (पूर्वोक्त) (नास्तिक) दृष्टि का आश्रय लेने वाले जो मनुष्य अपने नित्य स्वरूप को नहीं मानते, जिनकी बुद्धि तुच्छ है, जो उग्र कर्म करने वाले (और) संसार के शत्रु हैं, उन मनुष्यों की सामर्थ्य का उपयोग जगत का नाश करने के लिये ही होता है।

विवेचन- हे अर्जुन, इस मिथ्या ज्ञान का अवलम्बन करके जिनका ज्ञान नष्ट हो गया, जिनका स्वभाव नष्ट हो गया, ऐसे मन्द-बुद्धि व्यक्ति सबका अपकार करने वाले, उग्र कर्म करने वाले तथा केवल जगत का नाश करने वाले होते हैं।

आपको जितने भी वामपँथी, नक्सली, उग्रवादी, आतङ्कवादी आदि मिलेंगे, ये सारे इसी विचार के मिलेंगे। कोई बम फोड़ेगा, कोई पटरी उड़ाएगा, कोई गाड़ी पर हमला करेगा। ये सब उग्र कर्म वाले होते हैं। इनके मन में किसी का हित नहीं होता।

16.10

काममाश्रित्य दुष्पूरं(न्), दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्, प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।।16.10।।

कभी पूरी न होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर दम्भ, अभिमान और मद में चूर रहने वाले (तथा) अपवित्र व्रत धारण करने वाले मनुष्य मोह के कारण दुराग्रहों को धारण करके (संसार में) विचरते रहते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि दम्भ, मान और मद में चूर रहने वाले मनुष्य किसी भी प्रकार पूर्ण न होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर और मिथ्या सिद्धान्तों को ग्रहण करके भ्रष्ट आचरणों को लेकर संसार में विचरण करते रहते हैं। जो जितनी कामनाओं को भविष्य में पूर्ण करना चाहता है, उन कामनाओं को पूर्ण करने की आशा में सारे गलत काम करता है और भ्रष्ट आचरण करके भी उन कामनाओं को पूरा करना चाहता है। मन का स्वभाव अतृप्त सा होता है। यह कभी तृप्त नहीं होता।

टॉलस्टाय एक रूसी लेखक थे। वे बहुत बड़े समाज सुधारक थे। वे गाँधीजी के आदर्श थे। गाँधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में अपने आश्रम का नाम भी टॉलस्टाय आश्रम रखा था। टॉलस्टाय ने बहुत अच्छी कहानियाँ लिखी हैं। उन्हीं की एक कहानी है-

एक किसान के घर पर एक साधु आये। किसान ने उन्हें अपने घर में भोजन करवाया। किसान बहुत असन्तुष्ट रहता था क्योंकि उसके पास भूमि की बहुत कमी थी। साधु ने किसान से पूछा कि तुम्हारा जीवन-यापन हो जाता है कि नहीं? किसान ने कहा कि केवल जीवन-यापन से क्या होता है? मैं तो चाहता हूँ कि मेरे पास बहुत सारी भूमि हो, बहुत बड़ा खेत हो। इतना बड़ा कि उसकी सीमा न दिखे। साधु ने पहले तो उसे समझाया कि इसमें कुछ नहीं रखा है। इन कामनाओं से कभी किसी को तृप्ति नहीं मिलती है। किसान बहुत महत्त्वाकाङ्क्षी था, वह नहीं माना। साधु ने कहा कि ठीक है, एक स्थान बताता हूँ। साइबेरिया में एक निर्जन गाँव है। वहाँ की भूमि निःशुल्क है और वहाँ के प्रधान चाहते हैं कि कोई अच्छा किसान मिले तो वे उसे निःशुल्क भूमि देकर वहाँ की भूमि पर खेती करवा सकें। तुम वहाँ के प्रधान से जितनी भूमि माँगोगे, तुम्हें मिल जाएगी। किसान बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपनी छोटी सी भूमि को बेच दिया तथा उससे अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुएँ खरीद इस उस गाँव में पहुँचा। वहाँ पहुँच कर वह बिना स्नान, भोजन के सीधा प्रधान के पास पहुँच गया। उसने प्रधान से पूछा कि मैं अपनी भूमि बेच कर इसनी धनराशि लाया हूँ। इसमें आप मुझे कितनी भूमि देंगे? मुखिया ने कहा कि तुम अपना धन अपने पास रखो और जितनी भूमि चाहिए, ले लो। जो कुएँ, तालाब चाहिए, वे सब भी मिल जाएँगे।

किसान के मन में इतनी कामना थी कि वह मुखिया के कहने पर सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने कहा कि ऐसे नहीं, आप बताईए कि मुझे कितनी भूमि देंगे? मुखिया जी परेशान हो गए। उन्होंने कहा कि तुम कल सूर्योदय से सूर्यास्त तक जितनी भूमि पर चक्कर लगा कर आ जाओगे, उतनी भूमि तुम्हारी हो जायेगी। किसान को रात भर नींद ही नहीं आयी। उसने योजना बनायी। उसने सोचा कि कल दिन भर खाने के लिए अभी ही रोटियाँ बना कर रख लेता हूँ। पानी भी साथ में रख लेता हूँ ताकि रुकना न पड़े। वह रात में सोया भी नहीं और सूर्योदय से पूर्व मुखिया के घर पर खड़ा हो गया। मुखिया जी उठे तो देखा कि वह व्यक्ति खड़ा है। उन्होंने एक रेखा खींच दी और कहा कि जाओ, सायंकाल तक जितनी भी भूमि पर घूम कर इस रेखा तक आ जाओगे, उतनी भूमि तुम्हारी हो जायेगी। किसान ने विचार किया कि जब तक सूर्यदेव मेरे सिर तक आयेंगे, तब तक मैं चलूँगा। उसके बाद वापस लौटना आरम्भ कर दूँगा। अधिक चलने के लोभ में वह शुरू में भागने लगा। दोपहर तक उसने एक घूँट जल भी नहीं पिया। दोपहर में जब सूर्यदेव सिर पर आ गये तो उसको वहाँ से वापसी करनी थी। उसने देखा कि निकट ही एक बहुत बड़ा तालाब है। उसने सोचा कि यदि मैं यहाँ से वापस लौटूँगा तो तालाब मुझे नहीं मिल पायेगा। उसने सोचा कि तालाब का चक्कर पूरा करके लौटता हूँ। संयोग से वह तालाब दो किलोमीटर का था और उसके तट की भूमि बहुत उपजाऊ थी। उसने तालाब का चक्कर लगाना आरम्भ किया और लोभवश तालाब से थोड़ा दूर होकर चलने लगा ताकि वह उपजाऊ भूमि भी मिल जाये। भूख लगी तो एक रोटी खायी किन्तु उससे चलने की गति कम हो रही थी तो और रोटी नहीं खायी। उसने रोटियाँ तालाब में फेंक दीं। उसने अनुमान लगाया कि दो बज गया होगा। उसने सोचा कि पानी पी कर शेष पानी फेंक देता हूँ ताकि बोझ कुछ कम हो जाये। उसने सुराही भी फेंक दी। तब तक चार बज गए। वह भूखा-प्यासा दौड़ता रहा और गिर पड़ा। वह बेहाल हो गया। शीघ्र पहुँचने के लोभ में वह बन्दर की भाँति हाथ और पैर से चलने लगा। दूर मुखिया जी दिखायी दे रहे थे लेकिन अब शरीर में इतनी शक्ति नहीं बची कि और चल सके। शरीर में जल की कमी हो गई और वह गाँव की सीमा तक पहुँचने से पूर्व ही गिर पड़ा और फिर कभी नहीं उठ पाया।

वह बहुत प्रसन्नचित्त होकर अपना जीवन जी रहा था। एक बड़ी भूमि की कामना और मिलने के बाद भी और प्राप्त करने की वासना ने उसका जीवन समाप्त कर दिया। हमारा जीवन भी ऐसा ही है। धन की भूख कभी समाप्त नहीं होती। आशाएँ मनुष्य को समाप्त कर देती हैं।

16.11

चिन्तामपरिमेयां(ञ्) च, प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा, एतावदिति निश्चिताः।।16.11।।

(वे) मृत्यु पर्यन्त रहने वाली अपार चिन्ताओं का आश्रय लेने वाले, पदार्थों का संग्रह और उनका भोग करने में ही लगे रहने वाले और 'जो कुछ है, वह इतना ही है' - ऐसा निश्चय करने वाले होते हैं।

विवेचन- मृत्यु पर्यन्त रहने वाली असङ्ख्य चिन्ताओं का आश्रय लेने वाले, विषय भोग करने में ही लगे रहने वाले, बस इतना ही सुख है, यह मान लेने वाले होते हैं।

16.12

आशापाशशतैर्बद्धाः(ख्), कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थम्, अन्यायेनार्थसञ्चयान्।।16.12।।

(वे) आशा की सैकड़ों फाँसियों से बँधे हुए मनुष्य काम-क्रोध के परायण होकर पदार्थों का भोग करने के लिये अन्याय पूर्वक धन-संचय करने की चेष्टा करते रहते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि अर्जुन! आशा की सैकड़ों फाँसियों में किसी एक फाँसी से ही प्राण चले जाते हैं किन्तु हमारा जीवन सैंकड़ों आशाओं की रस्सियों से जकड़ा हुआ है। आशा का जन्म कामना से होता है। कामना पूरी होकर वासना बनती है और वासना कभी पूरी नहीं होती। हम जितने भी गलत कार्य करते हैं, वे सब इन आशाओं के कारण ही करते हैं।

श्रीभगवान कहते हैं-

हमारे सारे दुःखों का कारण आशाएँ ही हैं।

इस जीवन में हम जितनी अधिक आशाएँ करते हैं, उतने ही ज्यादा पाप करते हैं। जितनी अधिक आशाएँ होंगी, उतने अधिक धन की आवश्यकता होगी। हम अधिक धन की आशा में कुछ भी गलत करने के लिए तैयार हो जाते हैं। चाहे कितना भी गलत करना है कर लो, बस पैसा मिल जाए तो ठीक है।

इस तरह की आशाएँ जो करते हैं उनकी आशाएँ तो कभी पूरी होती नहीं हैं। कुछ आशाएँ पूरी हो भी जाती हैं तो नई आशा का निर्माण हो जाता है।

एक कविता की बहुत सुन्दर पङ्क्तियाँ हैं-

क्यों कल्पना खुशी की, खुशी से ज्यादा खुशी देती है?

श्रीभगवान कहते हैं कि आशा की सैकड़ों फाँसियों से बँधे हुए मनुष्य काम-क्रोध के परायण होकर पदार्थों का भोग करने के लिये अन्याय पूर्वक धन-सञ्चय करने की चेष्टा करते रहते हैं।

सन्तों ने कहा है कि सुखी रहना है तो आशा की रस्सी को बदल दो-

एक ही उपाय है- **"आशा एक रामजी से, दूजी आशा छोड़ दे"**। बारहवें अध्याय में श्रीभगवान कहते हैं- **सन्तुष्टोयेनकेनचित्** अर्थात् जो है उसी में सन्तुष्ट रहें।

16.13

इदमद्य मया लब्धम्, इमं(म्) प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे, भविष्यति पुनर्धनम्।।16.13।।

वे इस प्रकार के मनोरथ किया करते हैं कि - इतनी वस्तुएँ तो हमने आज प्राप्त कर लीं (और अब) इस मनोरथ को प्राप्त (पूरा) कर लेंगे। इतना धन तो हमारे पास है ही, इतना (धन) फिर भी हो जायगा।

विवेचन- वे यह सोचा करते हैं कि आज हमने इतना कुछ प्राप्त कर लिया, कल और कुछ प्राप्त कर लेंगे। इतना धन हमारे पास है ही, इतना धन और प्राप्त कर लेंगे। बस आशाएँ ऐसे ही चलती रहेंगी।

16.14

असौ मया हतः(श्) शत्रुः(र्), हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं(म्) भोगी, सिद्धोऽहं(म्) बलवान्सुखी।।16.14।।

वह शत्रु तो हमारे द्वारा मारा गया और (उन) दूसरे शत्रुओं को भी (हम) मार डालेंगे। हम ईश्वर (सर्व समर्थ) हैं। हम भोग भोगने वाले हैं।हम सिद्ध हैं, (हम) बड़े बलवान (और) सुखी हैं।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि आशाओं में डूबे मनुष्य सोचते हैं कि वह शत्रु तो मेरे द्वारा मारा गया और उन दूसरे शत्रुओं को भी मैं ही मार डालूँगा। मैं ही ईश्वर हूँ, मैं ही भोगने वाला हूँ। मैं ही सिद्ध हूँ, मैं ही बलवान और सुखी हूँ।

हिरण्यकश्यपु को याद कीजिए जिसने श्रीविष्णु भगवान की मूर्तियों को ही तुड़वा दिया। अपनी मूर्तियाँ लगवा दीं। कहने लगा कि मैं ही भगवान हूँ और अपनी पूजा करने के लिए कह देता है।

16.15, 16.16

आढ्योऽभिजनवानस्मि, कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य, इत्यज्ञानविमोहिताः।।16.15।।
अनेकचित्तविभ्रान्ता, मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः(ख्) कामभोगेषु, पतन्ति नरकेऽशुचौ।।16.16।।

हम धनवान हैं, बहुत से मनुष्य हमारे पास हैं, हमारे समान दूसरा कौन है? (हम) खूब यज्ञ करेंगे, दान देंगे (और) मौज करेंगे - इस तरह (वे) अज्ञान से मोहित रहते हैं।
(कामनाओं के कारण) तरह-तरह से भ्रमित चित्त वाले, मोह-जाल में अच्छी तरह से फँसे हुए (तथा) पदार्थों और भोगों में अत्यन्त आसक्त रहने वाले मनुष्य भयंकर नरकों में गिरते हैं।

विवेचन- मैं बड़ा धनी हूँ, मैं बड़े कुटुम्ब वाला हूँ, मेरे जैसा कौन है? यहाँ हम दुर्योधन को याद कर सकते हैं। मैं यज्ञ करूँगा, दान करूँगा, मौज करूँगा। इस तरह ये आसुरी शक्तियाँ अज्ञान से मोहित रहती हैं। कभी न खत्म होने वाली कामनाओं के कारण ये भ्रमित चित्त वाले मोह-जाल में अच्छी तरह से फँसे होते हैं। विषयों और भोगों में अत्यन्त आसक्त रहने वाले आसुरी प्रवृत्ति के मनुष्य अत्यधिक अपवित्र लोकों में गिर जाते हैं।

रजोगुण और सतोगुण का अहङ्कार मनुष्य को अन्त में पतित कर देता है और तमोगुण की ओर ले जाता है। जिसकी आशाएँ पूरी नहीं हुईं, वह निराशा से मरता है और जिसकी पूरी हो गईं, वह तमोगुण में मर जाता है।

16.17

आत्मसम्भाविताः(स्) स्तब्धा, धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते, दम्भेनाविधिपूर्वकम्।।16.17।।

अपने को सबसे अधिक पूज्य मानने वाले, अकड़ रखने वाले (तथा) धन और मान के मद में चूर रहने वाले वे मनुष्य दम्भ से अविधिपूर्वक नाममात्र के यज्ञों से यजन करते हैं।

विवेचन- अपने आप को सर्वश्रेष्ठ मानने वाले घमण्डी पुरुष, धन और मान के मद में चूर होकर केवल नाम मात्र के यज्ञों द्वारा पाखण्ड से, शास्त्र विधि रहित यज्ञ करते हैं। आजकल ऐसा करना बहुत अधिक हो गया है। कम्बल, रोटी बाँटने वाले तो ठीक थे, अब लैपटॉप भी बाँटने लगे।

गणपति पूजा तथा नवरात्रि के पण्डाल सजते हैं, जहाँ पर शास्त्र विधि का पालन किए बिना पूजन किया जाता है। सभी पण्डालों में ऐसे ही करते हैं, यह तो नहीं कह सकते लेकिन अधिकतर पण्डालों में बिना शास्त्र विधि के पूजन, हवन करते हैं।

गणेशोत्सव के दौरान पण्डालों में गणपति जी की छोटी मूर्ति रखते हैं और उसके आयोजनकर्ता का बड़ा सा कट-आउट गणपति विग्रह के बाजू में लगा देते हैं। हमने यह भी देखा है कि देवी-देवताओं के पण्डाल सजते हैं, उनमें अभद्र भाव के फिल्मी गीतों को लगा दिया जाता है। यह विचार भी नहीं करते कि वे क्या कर रहे हैं?

16.18

अहङ्कारं(म्) बलं(न्) दर्पं(ङ्), कामं(ङ्) क्रोधं(ञ्) च संश्रिताः ।

मामात्मपरदेहेषु, प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।।16.18।।

(वे) अहंकार, हठ, घमण्ड, कामना और क्रोध का आश्रय लेने वाले मनुष्य अपने और दूसरों के शरीर में (रहने वाले) मुझ अन्तर्यामी के साथ द्वेष करते हैं (तथा) (मेरे और दूसरों के गुणों में) दोष दृष्टि रखते हैं।

विवेचन- अहङ्कार, हठ, घमण्ड, कामना और क्रोध का आश्रय लेने वाले मनुष्य, अपने और दूसरों की निन्दा करने वाले मनुष्य मुझ अन्तर्यामी के साथ भी द्वेष करते हैं। वे श्रीभगवान को भी नहीं मानते और उनसे भी द्वेष करते हैं।

16.19

तानहं(न्) द्विषतः(ख्) क्रूरान् , संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभान्, आसुरीष्वेव योनिषु।।16.19।।

उन द्वेष करने वाले, क्रूर स्वभाव वाले (और) संसार में महानीच, अपवित्र मनुष्यों को मैं बार-बार आसुरी योनियों में ही गिराता ही रहता हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि उन द्वेष करने वाले पापाचारी, क्रूर स्वभाव वाले संसार के महानीच मनुष्यों को मैं बार-बार दण्ड देकर आसुरी और अपवित्र योनियों में डालता रहता हूँ।

16.20

आसुरीं(यँ) योनिमापन्ना, मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय, ततो यान्त्यधमां(ङ्) गतिम्।।16.20।।

हे कुन्तीनन्दन ! (वे) मूढ मनुष्य मुझे प्राप्त न करके ही जन्म-जन्मान्तर में आसुरी योनि को प्राप्त होते हैं, (फिर) उससे भी अधिक अधम गति में अर्थात् भयंकर नरकों में चले जाते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान आगे कहते हैं, है अर्जुन! वे मूढ़ मनुष्य मुझे प्राप्त न करके, जन्म-जन्मान्तर तक आसुरी योनियों को प्राप्त होते हैं और उससे भी अधिक नीच गति को प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकों में चले जाते हैं।

16.21

त्रिविधं(न्) नरकस्येदं(न्), द्वारं(न्) नाशनमात्मनः।
कामः(ख्) क्रोधस्तथा लोभः(स्), तस्मादेतत्त्रयं(न्) त्यजेत्।।16.21।।

काम, क्रोध और लोभ - ये तीन प्रकार के नरक के दरवाजे जीवात्मा का पतन करने वाले हैं, इसलिये इन तीनों का त्याग कर देना चाहिये।

विवेचन- यह बहुत महत्त्वपूर्ण श्लोक है। श्रीभगवान कहते हैं, "हे अर्जुन! काम, क्रोध और लोभ- ये तीन प्रकार के नरक के द्वार हैं। ये जीवात्मा का नाश करने वाले, पतन करने वाले हैं, इसलिये इन तीनों का त्याग कर देना चाहिये।"

साधारण रूप से हम विचार करेंगे तो हम तो नरक में ही जाएँगे क्योंकि हम में भी काम, क्रोध और लोभ है। सन्त और महापुरुष कहते हैं कि इसका अर्थ यह है कि कामनाओं का वेग तो सभी मनुष्यों को आएगा, यह स्वाभाविक है, लेकिन जो इस वेग को नहीं

रोक पाता वह नरक में चला जाता है। ऐसे ही क्रोध और लोभ का भी वेग आता है। मनुष्य उसको नहीं रोक पाएगा तो वह नरक में चला जाता है, अर्थात् ये वेग मनुष्य को अधोगति में ले जाने वाले होते हैं, इसलिए इन तीनों का त्याग कर देना चाहिए।

16.22

एतैर्विमुक्तः(ख्) कौन्तेय, तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः(श्) श्रेयस् , ततो याति परां(ङ्) गतिम्।।16.22।।

हे कुन्तीनन्दन ! इन नरक के तीनों दरवाजों से रहित हुआ (जो) मनुष्य अपने कल्याण का आचरण करता है, (वह) उससे परम गति को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं, हे अर्जुन! हे कुन्ती-नन्दन! इन तीनों नरक के द्वारों से रहित मनुष्य अपने कल्याण का आचरण करता है और इससे वह परम गति को प्राप्त हो जाता है, अर्थात् मुझे प्राप्त हो जाता है। जो वस्तु से होता है, वह लोभ और जो व्यक्ति से होता है, वह मोह होता है। केवल भवन ऐसा माना गया है जिससे लोभ और मोह दोनों होता है।

अन्तिम दो श्लोकों में श्रीभगवान एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण जीवन का सूत्र देते हैं।

16.23

यः(श्) शास्त्रविधिमुत्सृज्य, वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति , न सुखं(न्) न परां(ङ्) गतिम् ।।16.23।।

जो मनुष्य शास्त्रविधि को छोड़कर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि (अन्तःकरण की शुद्धि) को, न सुख (शान्ति) को (और) न परमगति को (ही) प्राप्त होता है।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! जो मनुष्य शास्त्रविधि को त्यागकर, अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न तो सिद्धि को प्राप्त करता है, न सुख-शान्ति को प्राप्त करता है और न ही परम गति को प्राप्त होता है।

अपने आप को अधिक पढ़ा-लिखा मानने वाले लोग शास्त्र वचनों की परम्पराओं की भी उपेक्षा करने लग जाते हैं। ऐसे कई लोग मिल जाएँगे जो कहते हैं, अरे यह श्राद्ध किस लिए करना? हम तो अनाथाश्रम में जाकर बच्चों को भोजन वगैरह करवाते हैं। शिवजी को दूध चढ़ाने की क्या आवश्यकता है? गरीबों में दूध बाँट देंगे। श्रीभगवान की पूजा करके क्या करना है? मेरा कार्य ही मेरी पूजा है। यह तो शास्त्र विधि का अनादर है। शास्त्र विधि की उपेक्षा करके हम कुछ भी कर लेते हैं तो न तो सुख मिलेगा, न सिद्धि मिलेगी और न परम गति ही मिलेगी।

16.24

तस्माच्छास्त्रं(म्) प्रमाणं(न्) ते, कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं(ङ्), कर्म कर्तुमिहार्हसि।।16.24।।

अतः तेरे लिये कर्तव्य-अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र (ही) प्रमाण है - (ऐसा) जानकर (तू) इस लोक में शास्त्रविधि से नियत कर्तव्य-कर्म करने योग्य है अर्थात् तुझे शास्त्रविधि के अनुसार कर्तव्य-कर्म करने चाहिये।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि अर्जुन! इससे तेरे लिये कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है, ऐसा जानकर तू

शास्त्रविधि से नियत कर्त्तव्य-कर्म कर।

श्रीभगवान ने शास्त्र को किसी भी व्यक्ति से बड़ा बताया है। अगर किसी भी व्यक्ति और शास्त्र में भेद मिले, तो आप शास्त्र की बात मानिएगा, यह श्रीभगवान का उपदेश है। किसी आचार्य, किसी सन्त या किसी महापुरुष के साथ चर्चा करके इसका मार्ग निकालना चाहिए।

इसके साथ ही श्रीभगवान सोलहवें अध्याय का समापन करते हैं।

इसके उपरान्त एक मिनट के हरिनाम सङ्कीर्तन के साथ आज के विवेचन सत्र का समापन हुआ तथा प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

हरि शरणं, हरि शरणं, हरि शरणं, हरि शरणं |

हरि शरणं, हरि शरणं, हरि शरणं, हरि शरणं ||

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता- गौरीशंकर भैया

प्रश्न- क्या हम पुण्य करने से अपने पाप कर्म को समाप्त या कम कर सकते हैं?

उत्तर- कुछ कर्मों के फल हमारे पुण्य कर्मों से नष्ट हो जाते हैं, किन्तु कुछ कर्मों के फल भोगने ही पड़ते हैं। जो मध्यम प्रारब्ध होता है, वह हमारे पुण्य कर्मों से नष्ट हो जाता है, जो तीव्र प्रारब्ध होता है उसे तो भोगना ही पड़ता है। कौन से कर्म तीव्र हैं कौन से मध्यम? यह समझने की शक्ति हमें नहीं है। जो पाप अनजाने में हो जाते हैं या हम जिन्हें करना नहीं चाहते थे, वे घट गये तो वे पुण्य कर्मों से नष्ट हो जाते हैं। ऐसे कर्म प्रायश्चित से नष्ट हो जाते हैं किन्तु जो अपराध जान बूझ कर किये जाते हैं, वे पुण्य कर्मों से नष्ट नहीं होते उन्हें तो भोगना ही पड़ता है। गुरु के मार्ग-दर्शन में हम प्रायश्चित कर सकते हैं।

प्रश्नकर्ता- गौरीशंकर भैया

प्रश्न- हमें अपनी कार्यशैली शास्त्र सम्मत रखनी चाहिए किन्तु शास्त्र हर कोई पढ़ नहीं सकता, तो हम कैसे जानें कि शास्त्र सम्मत क्या है?

उत्तर- पूर्वजों की परम्परा में हमें जो प्राप्त है, वह शास्त्र सम्मत है। यदि और आगे जानना चाहें तो सन्तों के प्रवचन सुनिये। रामायण-महाभारत पढिये उससे शास्त्रों का सामान्य ज्ञान सबको हो जाता है। वह सबको सरलता से समझ में आ जाता है।

प्रश्नकर्ता- देवेन्द्र भैया

प्रश्न- काम, क्रोध, लोभ को नरक का द्वार कहा गया है, यहाँ काम से क्या तात्पर्य है?

उत्तर- काम से तात्पर्य कामनाओं से है, काम वासना भी समस्त कामनाओं का एक भाग है।

प्रश्नकर्ता- विकास भैया

प्रश्न- क्या दान किसी को भी दिया जा सकता है? क्या ग़लत दान का दुष्प्रभाव हम पर भी पड़ता है?

उत्तर- श्रीभगवान ने सत्रहवें अध्याय में इसका विस्तार से वर्णन किया है।

दातव्यमिति यद्दानम् दीयतेऽनुपकारिणे।

देशी काले च पात्रे च तद्दानम् सात्त्विकम् स्मृतम्।।(17-20)

देश, काल, पात्र का विचार करके यदि दान दिया जाय तो वह सात्त्विक दान होता है किन्तु यदि देश, काल, पात्र का विचार किये बिना भी दान दें तो वह ख़राब नहीं होता, वह राजसिक दान होता है। उसका कोई बुरा फल नहीं होता, दान करने की आदत बननी चाहिए किन्तु यदि यह जानते हुए कि अमुक व्यक्ति पैसों से शराब पी लेगा तो दान तामसिक हो जाता है, उसका बुरा प्रभाव पड़ सकता है। कष्टकारी जीवन काट रहे व्यक्ति को दान देने से उसका कष्ट बढ़ता नहीं है, हमारा स्वभाव करुणामय है, दान देने से किसी का भी कष्ट बढ़ता नहीं।

प्रश्न- दिव्य गुणों को बढ़ाने का क्या मार्ग है?

उत्तर- हम सबके अन्दर सभी छब्बीस दैवीय गुण विद्यमान हैं किन्तु उनकी मात्रा अलग-अलग हो सकती है। जो जितना है उससे अधिक बढ़ायें। एक प्रतिशत से जितना आगे तक बढ़ सकते है बढ़ायें। सौ प्रतिशत किसी में नहीं हो सकते हैं। मात्र गीता-पठन से इसे नहीं बढ़ाया जा सकता। बुरे गुण गीता पठन मात्र से नहीं घटेंगे। वे घटेंगे हमारे कर्मों से।श्रीभगवान ने पन्द्रहवें अध्याय में कहा कि-

यतन्तो योगिनश्चैनं, पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।

जब तक अन्त:करण की शुद्धता नहीं होगी, काम नहीं बनेगा। अन्त:करण की शुद्धि के लिये सत्य बोलो, अहिंसा का पालन करो, यज्ञ करो, दूसरों की सहायता करो, दान करो, यथासम्भव अपने को ग़लत कार्यों से बचाओ। छब्बीस दैवीय गुणों को व्यवहार में लाने का प्रयास करो। सभी कार्य धीरे-धीरे नित्य अभ्यास से करो। कई बार हम दैवीय बनने के चक्कर में परिवार को भी भूल जाते है, यह भी उचित नहीं है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्याय:।।

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'देवासुरसम्पदविभाग योग' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||